

२१ वीं सदी की प्रमुख समस्याएँ और जैन-दर्शन के परिप्रेक्ष्य में उनके समाधान

डॉ. सागरमल जैन...✍

आज सम्पूर्ण विश्व अशान्त एवं तनावपूर्ण स्थिति में हैं। बौद्धिक विकास से प्राप्त विशाल ज्ञान-राशि और वैज्ञानिक तकनीक से प्राप्त भौतिक सुख-सुविधा एवं आर्थिक समृद्धि मनुष्य की आध्यात्मिक, मानसिक एवं सामाजिक विपन्नता को दूर नहीं कर पाई हैं। ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा देने वाले सहस्राधिक महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के होते हुए भी आज का शिक्षित मानव अपनी स्वार्थपरता और भोग-लोलुपता पर विवेक एवं संयम का अंकुश नहीं लगा पाया है। भौतिक सुख-सुविधाओं का यह अम्बार भी उसके मानस को सन्तुष्ट नहीं कर सका है। आवागमन के सुलभ साधनों ने विश्व की दूरी को कम कर दिया है, किन्तु मनुष्य-मनुष्य के बीच हृदय की दूरी आज ज्यादा हो गई है। सुरक्षा के साधनों की यह बहुलता आज भी उसके मन में अभय का विकास नहीं कर पाई है। आज भी मनुष्य उतना ही आशंकित, आतंकित और आक्रामक है, जितना आदिम युग में रहा होगा। मात्र इतना ही नहीं, आज विध्वंसकारी शस्त्रों के निर्माण के साथ उसकी यह आक्रामक वृत्ति अधिक विनाशकारी बन गई है और आज शस्त्र-निर्माण की इस अंधी दौड़ में सम्पूर्ण मानव-जाति की अन्त्येष्टि की सामग्री तैयार की जा रही है। आर्थिक सम्पन्नता की इस अवस्था में भी मनुष्य की इस अर्थलोलुपता ने मानव-जाति को शोषक और शोषित ऐसे दो वर्गों में बाँट दिया है जो एक-दूसरे को पूरी तरह निगल जाने की तैयारी कर रहे हैं। एक भोगाकांक्षा और तृष्णा की दौड़ में पागल है, तो दूसरा पेट की ज्वाला को शान्त करने के लिए व्यग्र और विक्षुब्ध। आज विश्व में वैज्ञानिक तकनीकी और आर्थिक समृद्धि की दृष्टि से सबसे अधिक विकसित राष्ट्र यू.एस.ए. मानसिक तनावों एवं आपराधिक प्रवृत्तियों के कारण सबसे अधिक परेशान है। इस सम्बन्धी उसके आँकड़े चौंकाने वाले हैं। आज मनुष्य का सबसे बड़ा दुर्भाग्य तो यह है कि इस तथाकथित सभ्यता के विकास के साथ उसकी आदिम युग की एक सहज, सरल एवं स्वाभाविक जीवन-शैली भी उससे छिन गई है। आज जीवन के

हर क्षेत्र में कृत्रिमता और छद्मों का बाहुल्य है। उसके भीतर उसका 'पशुत्व' कुलाँचे भर रहा है, किन्तु बाहर वह अपने को 'सभ्य' दिखाना चाहता है। अन्दर वासना की उद्दाम ज्वालायें और बाहर सच्चरित्रता और सदाशयता का छद्म जीवन, यही आज के मानव-जीवन की त्रासदी है, पीड़ा है।

आसक्ति, भोगलिप्सा, भय, क्रोध, स्वार्थ और कपट की दमित मूलप्रवृत्तियों और उनसे जनित दोषों के कारण मानवता आज भी अभिशप्त है, दोहरे संघर्षों के कारण आज उसका मानस तनावयुक्त है - विक्षुब्ध है, तो बाह्य संघर्षों से गुजर रही है, १. आन्तरिक और २. बाह्य। आन्तरिक संघर्ष के कारण सामाजिक जीवन अशान्त और अस्त-व्यस्त है। आज का मनुष्य परमाणु-तकनीक की बारीकियों को अधिक जानता है, किन्तु एक सार्थक सामंजस्यपूर्ण जीवन के आवश्यक मूल्यों के प्रति उसका उपेक्षा भाव है। वैज्ञानिक प्रगति से समाज के पुराने मूल्य ढह चुके हैं और नए मूल्यों का सृजन अभी हो नहीं पाया है। इक्कीसवीं शती के प्रवेश द्वार पर खड़े आज हम मूल्य-रिक्तता की स्थिति में जी रहे हैं और मानवता नए मूल्यों की प्रसव-पीड़ा से गुजर रही है। आज हम उस कगार पर खड़े हैं, जहाँ मानव-जाति का सर्वनाश हमें पुकार रहा है। देखें, इस दुःखद स्थिति में जैनधर्म के सिद्धान्त हमारा क्या मार्गदर्शन कर सकते हैं?

वर्तमान में मानव जीवन की समस्याएँ निम्नांकित हैं -

१. मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, २. सामाजिक एवं जातीय संघर्ष, ३. पर्यावरण के प्रदूषण की समस्या, ४. विध्वंसक शस्त्रों का अम्बार, ५. धार्मिक रूढ़िवाद, ६. वैचारिक संघर्ष एवं ७. आर्थिक संघर्ष।

अब हम इन सभी समस्याओं पर जैनधर्म की शिक्षाओं की दृष्टि से विचार कर यह देखेंगे कि वह इन समस्याओं के समाधान के क्या उपाय प्रस्तुत करता है।

मानसिक अन्तर्द्वन्द्व

मनुष्य में उपस्थित रागद्वेष की वृत्तियाँ और उनसे उत्पन्न क्रोध, मान, माया और लोभ के आवेग हमारी मानसिक समता को भंग करते हैं। विशेष रूप से राग और द्वेष की वृत्ति के कारण हमारे चित्त में तनाव उत्पन्न होते हैं और इसी मानसिक तनाव के कारण हमारा बाह्य व्यवहार भी असन्तुलित हो जाता है। इसलिए भगवान महावीर ने राग-द्वेष और कषायों अर्थात् क्रोध, अहंकार, लोभ आदि की वृत्तियों पर विजय को आवश्यक माना था। वे कहते थे कि जब तक व्यक्ति राग-द्वेष से ऊपर नहीं उठ जाता है, तब तक वह मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता। वीतरागता ही महावीर की दृष्टि में जीवन का सबसे बड़ा आदर्श है। इसी की उपलब्धि के लिए उन्होंने समभाव की 'साधना' पर बल दिया। यदि महावीर की साधना-पद्धति को एक वाक्य में कहना हो तो हम कहेंगे की वह समभाव की साधना है। उनके विचारों में धर्म का एकमात्र लक्षण है - समता। वे कहते हैं कि 'समता ही धर्म है'। जहाँ समता है, वहाँ धर्म है और जहाँ विषमताएँ हैं, वहीं अधर्म है।

आचारांग में उन्होंने कहा था कि आर्यजनों ने समत्व की साधना को ही धर्म बताया है। समत्व की यह साधना तभी पूर्ण होती है जबकि व्यक्ति क्रोध, मान, माया और लोभ जैसे आवेगों पर विजय पाकर राग-द्वेष की वृत्ति से ऊपर उठ जाता है। वर्तमान युग में मानव-जाति में जो मानसिक तनाव दिन-प्रतिदिन बढ़ रहे हैं उनका कारण यह है कि राग-द्वेष की वृत्तियाँ मनुष्य पर अधिक हावी हो रही हैं। वस्तुतः व्यक्ति की ममता, आसक्ति और तृष्णा ही इन तनावों की मूल जड़ है और महावीर इनसे ऊपर उठने की बात कहकर मनुष्य को तनावों से मुक्त करने का उपाय सुझाते हैं। आचारांग में वे कहते हैं कि जितना-जितना ममत्व है, उतना-उतना सुख और दुःख वस्तुगत नहीं है, आत्मगत है। वे हमारी मानसिकता पर निर्भर करते हैं। यदि हमारा मन अशान्त है तो फिर बाहर से सुख-सुविधा का अम्बार भी हमें सुखी नहीं कर सकता है।

सामाजिक एवं जातीय संघर्ष

सामाजिक और जातीय संघर्षों के मूल में जो प्रमुख कारण रहा है - वह यह है कि व्यक्ति अपने अन्तस् में निहित

ममत्व व राग भाव के कारण मेरे परिजन, मेरी जाति, मेरा धर्म, मेरा राष्ट्र ऐसे संकुचित विचार विकसित कर अपने 'स्व' को संकुचित कर लेता है। परिणामस्वरूप अपने और पराये का भाव उत्पन्न होता है, फलतः भाई-भतीजावाद, जातिवाद, साम्प्रदायिकता आदि का जन्म होता है। आज मनुष्य-मनुष्य के बीच सुमधुर सम्बन्धों के स्थापित होने में यही विचार सबसे अधिक बाधक है। हम अपनी रागात्मकता के कारण अपने 'स्व' की संकुचित सीमा बनाकर मानव-समाज को छोटे-छोटे घेरों में विभाजित कर देते हैं, फलतः मेरे और पराए का भाव उत्पन्न होता है और यही आगे चलकर जो सम्पूर्ण मानव-जाति एक ही है (एगा मणुस्सजाई) उसे जाति, वर्ण अथवा राष्ट्र के नाम पर विभाजित करता है, यह मानवता के प्रति सबसे बड़ा अपराध है। महावीर के अनुसार सम्पूर्ण मानव-जाति को एक और प्रत्येक मानव को अपने समान मानकर ही हम अपने द्वारा बनाए गए क्षुद्र घेरों से ऊपर उठ सकते हैं और तभी मानवता का कल्याण संभव होगा।

भारत में आज जो जातिगत संघर्ष चल रहा है, उसके पीछे मूलतः जातिगत ममत्व एवं अहंकार की भावना ही कार्य कर रही है। महावीर का कहना था कि जाति या कुल का अहंकार मानवता का सबसे बड़ा शत्रु है। किसी जाति या कुल में जन्म लेने मात्र से कोई व्यक्ति महान् नहीं होता है, अपितु वह महान् होता है अपने सदाचार से एवं अपने तप-त्याग से। महत्त्व जाति विशेष में जन्म लेने का नहीं सदाचार का है। भगवान महावीर ने जाति के नाम पर मानव-समाज के विभाजन को और ब्राह्मण आदि किसी वर्ग विशेष की श्रेष्ठता के दावे को कभी स्वीकार नहीं किया। उनके धर्मसंघ में हरिकेशी जैसे चाण्डाल, शकडाल जैसे कुंभकार, अर्जुन जैसे माली और सुदर्शन जैसे वणिक सभी समान स्थान पाते थे। वे कहते थे कि चांडाल कुल में जन्म लेने वाले इस हरिकेशिबल को देखो, जिसने अपनी साधना से महानता अर्जित की है। वे कहते थे जन्म से कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र नहीं होता है। इस प्रकार महावीर ने जातिगत आधार पर मानवता के विभाजन को एवं जातीय अहंकार को निन्दनीय मानकर सामाजिक समता एवं मानवता के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है।

अहिंसा का सामूहिक परिपालन ही युद्ध की समस्या का समाधान -

वैयक्तिक एवं सामाजिक सुरक्षा एवं हितों के संरक्षण के लिए संघर्ष की समस्या मानव-समाज में चिरकाल से ही रही है। युद्धों और संघर्षों के उल्लेख मानव-समाज के इतिहास में अतिप्राचीन काल से ही पाए जाते हैं, यह कोई नवीन समस्या नहीं है, किन्तु आणविक और रासायनिक अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण के परिणामस्वरूप आगामी शती में युद्ध और संघर्ष की भयंकरता पूर्व की शताब्दियों की अपेक्षा कई गुना अधिक होगी। आज मानवता बारूद के उस ढेर पर खड़ी है, जहाँ उसके सर्वनाश के आसार स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। आज मानवता के समक्ष महावीर और महाविनाश - ये दो ही विकल्प खुले हुए हैं, इनमें से चुनाव उसे करना है। आज युद्ध और संघर्ष की समस्या मात्र व्यक्तियों, समाजों या राष्ट्रों के बीच की समस्या नहीं है, वह सम्पूर्ण मानवता की समस्या है। क्योंकि युद्ध और संघर्ष चाहे वे वैयक्तिक, सामाजिक या राष्ट्रीय स्तर पर हों, उनके परिणाम सम्पूर्ण मानवता को प्रभावित करेंगे। युद्ध एवं संघर्ष पूर्व की शताब्दियों में भी होते थे, फिर भी उनका परिणाम कुछ व्यक्तियों तक या व्यक्तियों के एक वर्ग विशेष तक ही सीमित होता था। वस्तुतः वे उन्हीं व्यक्तियों या वर्गों के बीच होते थे, जो स्वेच्छा से उनमें जुड़ते थे, यद्यपि कभी-कभी आक्रमण, नृशंस हत्याओं या लूटमार के परिणाम स्वरूप जनसाधारण को भी उनके परिणाम भुगतने होते थे, फिर भी उनके परिणाम सीमित लोगों पर ही होते थे। किन्तु आगे आने वाली शती में जो भी युद्ध या संघर्ष होंगे, वे चाहे व्यक्तियों, वर्गों या राष्ट्रों के बीच हों, फिर भी उनके परिणाम सम्पूर्ण मानवता को भुगतने होंगे। अब युद्धों और संघर्षों में केवल उन्हीं लोगों का विध्वंस नहीं होगा, जो इनमें लिप्त हैं, अपितु उसके विध्वंसक परिणाम उन्हीं लोगों को ज्यादा भुगतना होंगे, जो उनमें लिप्त नहीं हैं और जिनका उन युद्धों से कोई सम्बन्ध नहीं है।

इक्कीसवीं शती में युद्ध की समस्या को केवल वैयक्तिक प्रयत्नों से वैयक्तिक स्तर पर नहीं सुलझाया जा सकेगा। अब उसके लिए सामाजिक स्तर पर प्रयत्न आवश्यक होगा। जैनधर्म में युद्ध और संघर्ष के निराकरण के लिए जो अहिंसक या अल्पहिंसक विधि प्रदान की गई थी, उसकी उपयोगिता तो भविष्य

में भी बनी रहेगी, फिर भी उस विधि की कमी यह थी कि उसमें केवल वैयक्तिक स्तर पर ही युद्ध की समस्या का निराकरण सुझाया गया था। भरत और बाहुबली के बीच हार-जीत का निर्णय करने के लिए दृष्टि-युद्ध, मुष्टि-युद्ध आदि के जो सुझाव दिए गए थे, वे वैयक्तिक स्तर पर ही थे। किन्तु इक्कीसवीं शती में अहिंसा का परिपालन वैयक्तिक स्तर पर करने से समस्या का समाधान नहीं होगा, अपितु अब अहिंसा का परिपालन सामूहिक स्तर पर करना होगा। क्योंकि अब युद्ध की हिंसा के परिणामों को भुगतने के लिए केवल व्यक्तियों को नहीं, अपितु सम्पूर्ण समाज या मानवता को भागीदार बनना होता है। इक्कीसवीं शती के पूर्व गाँधी के एक अपवाद को छोड़कर सामान्यतया वैयक्तिक अहिंसा के परिपालन से ही युद्ध की समस्या का समाधान सुझाया गया था, किन्तु अब युद्ध और हिंसा की समस्या को केवल वैयक्तिक स्तर पर नहीं अपितु सामूहिक स्तर पर ही सुलझाना होगा। आज कुछ व्यक्तियों या वर्गों के अहिंसक बन जाने से काम नहीं चलेगा। अब तो सम्पूर्ण मानवता को अहिंसा के परिपालन का व्रत लेना होगा। क्योंकि आज एक व्यक्ति या एक राष्ट्र का पागलपन भी सम्पूर्ण मानवता का संहारक बन सकता है।

पर्यावरण के प्रदूषण की समस्या

आज जब पर्यावरण के प्रदूषण की समस्या के कारण सम्पूर्ण प्राणिजगत् के अस्तित्व का संकट उपस्थित हो गया है, हिंसा और अहिंसा का सम्बन्ध केवल मनुष्य जाति तक सीमित नहीं माना जा सकता। अब हिंसा केवल मानवीय हिंसा तक सीमित नहीं है। अब हिंसा का सम्बन्ध पेड़-पौधे, जल-थल और वायु सभी के साथ जुड़ गया है। रासायनिक उद्योगों के कचरे एवं दूषित गैसों के साथ-साथ आवागमन के आधुनिक साधनों से निकलने वाले दूषित धुएँ के कारण यह समस्या अधिक गम्भीर बनती जा रही है। अतः इक्कीसवीं शती में हिंसा और अहिंसा को उसी व्यापक अर्थ में ग्रहण करना होगा, जिसका निर्देश भगवान महावीर ने आज से २५०० वर्ष पूर्व किया था। यह सर्वविदित है कि भगवान महावीर ने पेड़-पौधे ही नहीं जल-थल और वायु के प्रति भी की गई हिंसा को हिंसा माना था और उससे बचने का निर्देश दिया था। इक्कीसवीं शती में हमें पर्यावरण में प्रदूषण उत्पन्न करने वाले व्यक्ति को एक मनुष्य

की हत्या करने वाले व्यक्ति की अपेक्षा अधिक दोषी मानना होगा। क्योंकि पर्यावरण के प्रदूषण का परिणाम केवल एक व्यक्ति तक सीमित न होकर सम्पूर्ण मानवता या प्राणिजगत् पर होता है।

जीवन जीने का नियम संघर्ष नहीं, सहकार : सकमात्र समाधान

पर्यावरण के प्रदूषण की समस्या उत्पन्न होने का मूलभूत कारण यह था कि मनुष्य ने जीवन के विविध रूपों को मानवीय जीवन का एक साधन मान लिया था। वह यह मानने लगा था कि मनुष्य का जीवन न केवल सर्वश्रेष्ठ है, अपितु उसे अपनी सुख-सुविधाओं के लिए जीवन के दूसरे रूपों को नष्ट करने का अधिकार भी है। पाश्चात्य विकासवादियों ने जीवन का नियम 'अस्तित्व के लिए संघर्ष' और 'योग्यतम की विजय' प्रतिपादित किया था, जो एक मिथ्या धारणा पर आधारित है। यह सत्य है कि जीवन का संरक्षण और विकास जीवन के दूसरे रूपों पर आधारित होता है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य को जीवन के दूसरे रूपों को नष्ट करने का खुला अधिकार है। यह सत्य है कि मानवीय जीवन का सर्वश्रेष्ठ रूप है किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि मनुष्य को जीवन के दूसरे रूपों को नष्ट करने का खुला अधिकार है। जैन-दार्शनिक यह तो स्वीकार करते हैं कि एक जीवन जीवन के दूसरे रूपों पर अपने अस्तित्व के लिए निर्भर है, फिर भी उनके अनुसार 'जीवन का नियम संघर्ष नहीं सहकार' है। जहाँ पाश्चात्य विकासवादी ने संघर्ष को जीवन का नियम बताया है, वहाँ जैन-दार्शनिकों ने सहकार को जीवन का नियम बताया है। जैन-दार्शनिकों के अनुसार विकास की प्रक्रिया संघर्ष में नहीं, सहयोग पर निर्भर है। जैनदार्शनिक उमास्वाति ने आज से २००० वर्ष पूर्व तत्त्वार्थसूत्र में एक सूत्र दिया था - "परस्परोपग्रहोजीवानाम्"। जिसका तात्पर्य है एक दूसरे का सहयोग करना ही जीवन का नियम है। जीवनयात्रा पारस्परिक सहयोग के सहारे चलती है। हम जीवन के दूसरे रूपों का विनाश करके अपने अस्तित्व को सुरक्षित नहीं रख सकते। व्यवहार में भी हम देखते हैं कि जहाँ मनुष्य का जीवन पेड़-पौधों पर आश्रित है, वहीं पेड़-पौधों का जीवन मनुष्य एवं अन्य प्राणियों पर निर्भर है। वे मनुष्य एवं दूसरे प्राणियों की श्वास से निकली कार्बन-डाइआक्साइड को ग्रहण कर उसके

बदले में आवसीजन निःसृत करते हैं, जिससे प्राणियों का जीवन चलता है। पेड़-पौधों के द्वारा मनुष्य और दूसरे शाकाहारी प्राणियों को भोजन प्राप्त होता है और उन प्राणियों से निकले मल-मूत्र से पेड़-पौधे अपना भोजन ग्रहण करते हैं। पेड़-पौधे हमें आहार और प्राण वायु प्रदान करते हैं और हम पेड़-पौधों को आहार और प्राणवायु प्रदान करते हैं। इस प्रकार जीवन का चक्र संघर्ष नहीं सहकार पर निर्भर है। आगामी सदी में हमें जैन-आचार्यों के द्वारा दी गई इस जीवन-दृष्टि को अपनाना होगा, तभी हम मानवता का और जीवन के विविध रूपों का संरक्षण कर सकेंगे।

निःशस्त्रीकरण : युग की अनिवार्यता

आत्मसुरक्षा के नाम पर हिंसक अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण एवं संग्रह की वृत्ति अतिप्राचीन काल से ही चली आ रही है। मनुष्य ने अस्त्र-शस्त्रों का विकास अपने अस्तित्व के संरक्षण एवं भय से विमुक्ति के लिए किया था। किन्तु अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण एवं संग्रह की यह वृत्ति मनुष्य में आज तक अभय का विकास नहीं कर सकी है। आज अस्त्र-शस्त्रों के संग्रह की इस वृत्ति ने मानव को बारूद के ढेर पर खड़ा कर दिया है। कब इसका विस्फोट मानव जाति को राख का ढेर बना देगा, कोई नहीं जानता है। मनुष्य ने जिसके माध्यम से अभय को खोजने की कोशिश की थी, आज वही भय का सबसे बड़ा कारण बना हुआ है। यही कारण था कि आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान महावीर ने यह उद्घोष कर दिया था कि अस्त्र-शस्त्र के सहारे मानव जाति में अभय का विकास सम्भव नहीं है। उन्होंने आचारांग में कहा था - "अत्थि सत्थेन परंपरं, नत्थि असत्थेन परंपरं" अर्थात् शस्त्र तो एक से बढ़कर एक हो सकते हैं, किन्तु अशस्त्र से बढ़कर तो कुछ हो ही नहीं सकता है। महावीर की यह वाणी आज शत-प्रतिशत सत्य सिद्ध हो रही है। अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण की दौड़ में हमने एक से बढ़कर एक संहारक शस्त्रों का निर्माण किया और संहारक शस्त्रों के निर्माण की यह दौड़ आज उस स्थिति तक पहुँच चुकी है, जहाँ सम्पूर्ण मानवता के लिए एक चिता तैयार कर ली गई है, कब और कौन उसे मुखानि देकर समाप्त कर देगा, कोई नहीं जानता। अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण के द्वारा जिस अभय की खोज का प्रयत्न मानव-जाति ने किया था, वह वृथा ही सिद्ध हुई है। यदि मानव जाति में अभय का विकास करना है तो वह शस्त्रीकरण से नहीं, निःशस्त्रीकरण से

ही संभव होगा। आज शस्त्र और सेना के सहारे एक देश दूसरे के मन में भय और असुरक्षा की भावना उत्पन्न कर रहा है। आज विश्व के सम्पूर्ण देशों के उत्पादन का लगभग ३०% भाग सेना और शस्त्रों के निर्माण में खर्च हो रहा है यदि यह ३०% राशि मानवता के कल्याण में लगती तो कितना अच्छा होता। इक्कीसवीं शती की सबसे महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है, मानव-जाति में अभय का विकास करना। जैन चिन्तकों ने स्पष्ट रूप से यह उद्घोष किया था कि "दाणाणं सेट्टं अभयपयाणं" अर्थात् दानों में अभयदान से बढ़कर कोई दान नहीं है। दूसरों के हित और मंगल के प्रयत्नों में यदि कोई प्रयत्न सबसे बड़ा हो सकता है तो वह है प्राणिजगत् में अभय का यह विकास और यह अभय का विकास शस्त्रीकरण से नहीं निःशस्त्रीकरण से ही सम्भव होगा।

धर्म का आध्यात्मिकरण

विगत शताब्दियों में धर्म का सम्बन्ध मुख्य रूप से विधि-विधानों और कर्मकाण्डों तक सीमित होकर रह गया है, इक्कीसवीं शताब्दी में हमें धर्म के स्वरूप में परिवर्तन करना होगा। अब धर्म को 'रिच्युलिस्टिक' के स्थान पर 'स्पीच्युलिस्टिक' बनाना होगा। अब धर्म का कर्मकाण्डात्मक स्वरूप समाप्त करके उसे आध्यात्मिक बनाना होगा। जैनधर्म में धर्म का प्रयोजन भगवान को प्रसन्न करना न होकर आध्यात्मिक शान्ति की प्राप्ति है। अब वही धर्म जनता को अधिक आकर्षित करेगा जो उसे आध्यात्मिक शान्ति प्रदान करेगा। अब वह धर्म, जो नरक के भय और स्वर्ग के प्रलोभन पर खड़ा हुआ था, कोई अर्थ नहीं रखेगा, उसका स्थान वह धर्म लेगा जो तात्कालिक परिणाम प्रस्तुत करेगा।

इक्कीसवीं सदी में धर्म का कर्मकाण्डात्मक प्रश्न गौण तो अवश्य होगा, किन्तु मानव-प्रकृति का जो भावनात्मक पक्ष है, उसकी पूर्ति के लिए भक्तिभाव और पूजा-अर्चना के तत्त्व बने रहेंगे। यद्यपि इक्कीसवीं सदी में धर्म के क्षेत्र में तार्किकता प्रमुख होगी, किन्तु श्रद्धा का तत्त्व भी बना रहेगा। आवश्यकता यह होगी की धार्मिक कर्मकाण्डों की उद्देश्यात्मकता को स्पष्ट कर उन्हें ऐहिक जीवन की सुख-शांति के साथ जोड़ना होगा।

अब धार्मिक जीवन से सम्बन्धित वे ही कर्मकाण्ड मान्य हो सकेंगे, जिनकी प्रासंगिकता की तार्किक और वैज्ञानिक आधार पर सिद्ध किया जा सकेगा। जो भी कर्मकाण्ड तार्किक और वैज्ञानिक आधारों पर सिद्ध नहीं होंगे, उनका परित्याग करना

होगा। इक्कीसवीं सदी में आसन और ध्यान इस आधार पर समर्थित नहीं होंगे कि उनसे पारलौकिक जीवन में कोई उपलब्धि होगी, अपितु अब हमें उनकी वैयक्तिक तनाव-मुक्ति एवं शारीरिक स्वास्थ्य के लिए प्रासंगिकता सिद्ध करनी होगी। जहाँ तक जैन-आचार का प्रश्न है यह आवश्यक होगा कि हम उसकी वैज्ञानिकता को सिद्ध करें। इक्कीसवीं सदी में मांसाहार का त्याग इस आधार पर तो नहीं कराया जा सकेगा कि उसके परिणामस्वरूप नरक की प्राप्ति होगी अथवा नहीं करने पर स्वर्ग की उपलब्धि होगी। किन्तु यदि हम वैज्ञानिक दृष्टि से यह सिद्ध कर दें कि मांसाहार मनुष्य का स्वाभाविक आहार नहीं है अथवा उसके कारण मानव-स्वास्थ्य पर दूषित प्रभाव होता है अथवा उसके कारण पर्यावरण का सन्तुलन भंग होगा और परिणाम-स्वरूप मानव जाति को अपने अस्तित्व का खतरा उठाना होगा अथवा उसके परिणाम-स्वरूप मानव की करुणा की भावना समाप्त होगी, मानव स्वभाव में क्रूरता उत्पन्न होगी और फलतः हिंसा आदि संघर्ष होंगे अथवा यह कि मांसाहार सहज न्याय (Natural Justice) के प्रतिकूल है।

इस प्रकार जैन आचार के प्रत्येक विधि-विधान को तार्किक युक्तियों के साथ और वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट करना होगा और यदि हम ऐसा कर सके तो निश्चय ही इक्कीसवीं सदी के अनुरूप हमारी यह आचार-संहिता सुरक्षित रह सकेगी। यह सत्य है कि आने वाली इक्कीसवीं सदी जैनधर्म के अहिंसा आदि सिद्धान्तों और जीवनमूल्यों को प्रतिष्ठित करने में सहायक ही होगी। क्योंकि जैन-दर्शन के विभिन्न सिद्धान्त वैज्ञानिक आधारों पर स्थित हैं तथा सहज न्याय के समर्थक हैं। इक्कीसवीं सदी में जैन धर्म का यदि कोई पक्ष खण्डित होगा तो केवल वे थोथे कर्मकाण्ड और प्रदर्शन ही समाप्त होंगे, जो मूलतः अन्य परम्पराओं के अन्धानुकरण के परिणामस्वरूप जैनधर्म में प्रविष्ट हो गए हैं।

वस्तुतः इक्कीसवीं सदी में यदि कोई धर्म और जीवन मूल्य खड़े रह सकते हैं तो उन्हें वैज्ञानिक और तार्किक आधारों पर युक्तिसंगत होना चाहिए। इस प्रकार इक्कीसवीं सदी में जैन-धर्म में श्रद्धा पक्ष गौण होगा और ज्ञान पक्ष प्रमुख होगा। जहाँ तक जैन आचार का प्रश्न है, उसमें जो भाव पक्ष की प्रधानता है वह अधिक मुखर होगी और कर्मकाण्डात्मक पक्ष गौण होगा।

अपराध एवं उपकार की आध्यात्मिक समझ से तनावमुक्ति

डॉ. पारसमल अग्रवाल...

प्रोफेसर, भौतिक विज्ञान
विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन (म.प्र.)

१. समस्या के प्रकार

कभी आप किसी के उपकारी बनते हैं किन्तु जिसका उपकार आपने किया है, वह आपको अपराधी मानता है। उसकी यह मान्यता आपके तनाव का कारण बन सकती है।

एक शिक्षक ने उपकार की भावना से पढ़ाई के आग्रह एवं निवेदन को स्वीकार करके उसके बच्चे को कई महीनों तक निःशुल्क पढ़ाया। परीक्षा के एक माह पूर्व उस बच्चे ने पढ़ाई शिक्षक को छोड़कर किसी अन्य शिक्षक के घर पर ट्यूशन पढ़ना प्रारंभ किया। बालक द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ। पढ़ाई शिक्षक मानता है कि बालक इतना कमजोर था, फिर भी उसके पढ़ाने से वह उत्तीर्ण होने योग्य बन गया। बालक मानता है कि पढ़ाई शिक्षक ने उसका समय व्यर्थ गँवाया। दूसरे शिक्षक की ट्यूशन वह यदि शुरू से ही कर लेता, तो प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होता। कौन सही है? पढ़ाई शिक्षक उपकारी है या अपराधी? कौन न्याय करे? कैसे न्याय करे? क्या भविष्य में वह शिक्षक इस तरह से किसी का उपकार करना बंद कर दे?

इसी प्रकार यह भी संभव है कि कोई आप पर उपकार करे किन्तु आपको लगे कि उसने अपराध किया है। आपका यह भाव भी आपके तनाव का कारण बन सकता है।

एक अन्य संभावना पर भी विचार करते हैं। सड़क पर एक्सीडेंट से बेहोश एक अज्ञात व्यक्ति को आप अस्पताल पहुँचाते हैं। एक दूसरा व्यक्ति भी यही सेवाकार्य करना चाहता था किन्तु आपने आग्रह करके यह सेवाकार्य करने का जिम्मा अपने ऊपर लिया। आप अस्पताल में उसकी सेवा-शुश्रूषा करते हैं व जेब से अपना रुपया भी खर्च करते हैं किन्तु उसकी मृत्यु हो जाती है। उसकी मृत्यु से आपको उलझन पैदा हो जाती है। आप सोचते हैं कि आप या अन्य व्यक्ति किसी अधिक बड़े अस्पताल में बड़े डॉक्टर के पास ले गए होते, तो शायद इसकी मृत्यु नहीं होती। आपकी स्वयं की वह बुद्धि, जो उसके जीवित

रहने पर आपको उपकारी होने का प्रमाणपत्र देती, वह बुद्धि अब आपको उसकी मृत्यु होने पर अपराधी होने का एहसास करा रही है। आप अपनी नजरों में अपराधी हैं या उपकारी? क्या उसकी मृत्यु के कारणों की आप जाँच करा सकेंगे?

ऐसी घटना अपने वालों के साथ भी घट सकती है। कभी शादी हेतु लड़के/लड़की के चयन में भी आपका योगदान होता है व वह शादी दुःखद शादी बन सकती है। स्वयं के लिए या पुत्र, पुत्री, बहन, मित्र के लिए वर-वधू का चयन, व्यवसाय का निर्धारण, नौकरी के लिए किसी सिफारिश, बच्चे की पढ़ाई, रोगी की देखभाल आदि कार्यों में ही नहीं अपितु स्थान-स्थान पर हमारे जीवन में ऐसे प्रसंग आते हैं, जहाँ हमारी गाड़ी कई बार हमारी इच्छा के विपरीत घूम जाती है। तब हम अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार किसी को अपराधी व किसी के अपराधी मानकर तनाव आमंत्रित करते रहते हैं। कुछ तनाव अल्पकालीन होते हैं, तो कुछ तनाव इतने दीर्घकालीन हो जाते हैं कि किसी को डिप्रेशन तक की स्थिति आ जाती है।

२. अनेक पक्षों की यथार्थ समझ

उक्त स्थिति में अध्यात्म के मूलभूत सिद्धान्त बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। आगे बढ़ने के पूर्व यह सावधानी रखनी होगी कि कई घटनाएँ ऐसी होती हैं, जहाँ अपराधी एवं उपकारी का निर्णय करना निर्णायक के उद्देश्य पर निर्भर करता है। दंगे में एक व्यक्ति का इकलौता बच्चा मारा जाता है। वह बदले की भावना से हत्यारे की तलाश कर रहा है। क्या साम्प्रदायिक विद्वेष या राजनीतिक अराजकता या कमजोर प्रशासन आदि भी जिम्मेदार नहीं है? गाँधीजी ऐसे बदले की भावना से दुःखी पिता को उसकी तलाश में यह सुझाव देकर मदद करते हैं कि वह उसी दंगे के किसी अनाथ बच्चे को अपना बच्चा मानकर पाले। गाँधीजी की यह सलाह उसके बच्चे के अपराधी की तलाश का उत्तर किसी अपेक्षा से है भी व किसी अपेक्षा से नहीं भी। उनके

है कि भगवान महावीर ने मनुष्य की संचय-वृत्ति एवं भोगवृत्ति पर संयम रखने का उपदेश देकर मानवजाति के आर्थिक संघर्षों के निराकरण का मार्ग प्रशस्त किया था। वस्तुतः भगवान महावीर ने वृत्ति में अनासक्ति, विचारों में अनेकान्त, व्यवहार में अहिंसा, आर्थिक जीवन में अपरिग्रह और उपभोग में संयम के सिद्धान्त के रूप में मानवता के कल्याण का जो मार्ग प्रदर्शित किया था, वह इक्कीसवीं सदी में भी उतना ही प्रासंगिक होगा, जितना कि आज से २५०० वर्ष पूर्व था। आज भी अहिंसा,

अनेकान्त और अपरिग्रह की यह त्रिवेणी मानव-जाति के कल्मषों को धो डालने के लिए उतनी ही उपयोगी है, जितनी महावीर के युग में थी।

आज मात्र वैयक्तिक स्तर पर ही नहीं सामाजिक स्तर पर भी अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह की साधना करनी होगी, तभी हम एक समतामूलक समाज की रचना कर मानव-जाति को सन्नासों से मुक्ति दिला सकेंगे और यही महावीर के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

